ISSN : 2582 2802
A Refereed and Peer - Reviewed International e-Journal of Humanities and Social Sciences
by School of Humanities and Social Sciences
Dr. Babasaheb Ambedkar Open University, Ahmedabad

'जूठन' आत्मकथा में अभिव्यक्त दलित चेतना

डॉ.सुनील परमार
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी),
डॉ.बाबासाहेब आम्बेडकर ओपन यूनिवर्सिटी,
अहमदाबाद.

सारांश- दलित साहित्य में आत्मकथाएँ सबसे अधिक चर्चा का केंद्र रही है. दलित आत्मकथाएँ हमें यथार्थ से रूबरू करवाती है. 'जूठन' ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की अत्यधिक चर्चित आत्मकथा है, जो वाल्मीकि समाज के द्वारा भोगे हुए यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज है. 'जूठन' एक व्यक्ति की आत्मकथा नहीं बल्कि पूरे दलित समाज की यातना, पीड़ा, संघर्ष तथा समस्याओं को अभिव्यक्त करनेवाली रचना है.

बीज रूप शब्द- चूहड़े, अछूत, झाड़ू, जूठन

दलित साहित्य के आरम्भ में दलित आत्मकथाएँ सर्वाधिक चर्चा के केंद्र में रहीं. दलित आत्मकथाएँ यथार्थ का आइना है. अब तक बीस से अधिक आत्मकथाएँ आ चुकी है. मोहनदास नैमिशराय की अपने-अपने पिंजरे भाग-1, अपने-अपने पिंजरे भाग-2, रंग कितने संग मेरे भाग-3, ओमप्रकाश वाल्मीकि की जूठन 1997, जूठन खंड-2 (2015), कौशल्या बेसंत्री की दोहरा अभिशाप (1999), डी.आर.जाटव की मेरा सफ़र मेरी मंजिल (2000), माताप्रसाद की झोपडी से राजभवन तक, सूरजपाल चौहान की तिरस्कृत (2003), संतप्त (2006), सियाराम सहयोगी की एक भंगी कुलपति की अनकही कहानी (2008), रूपनारायण सोनकर की नागफनी (2009), डॉ.श्योराजसिंह बैचेन की मेरा बचपन मेरे कंधो पर(2009), डॉ.तुलसीराम की मुदर्हिया (2010), मणिकर्णिका (2014), धर्मवीर की मेरी पत्नी और भेड़िया (2011), सुशीला टांकभौरे की शिकंजे का दर्द (2011), जसराम हरनोटिया की तत्ता पानी (2016), रजनी तिलक की अपनी जमीं अपना आसमां (2017), अभय परमार की डेथ कांट स्टॉप मी-(गुजरात की पहली दलित

आत्मकथा) (2017), अनीता भारती की छुटे पन्नों की उडान (2018), कावेरी की टुकड़ा-टुकड़ा जीवन (2018), सुमित्रा महरोल की टूटे पंखों से परवाज तक (2020), कौशल पंवार की बवंडरों के बीच आदि आत्मकथाओं ने दलित समाज के प्रति नये सिरे से सोचने के लिए भारतीय समाज को प्रेरित किया हैं.

'जूठन' ओमप्रकाश वाल्मीकि जी की अत्यधिक चर्चित आत्मकथा है, जिसके मूल में वाल्मीकि समाज की आत्मकथा है. यह वाल्मीकि समाज के भोगे हुए उस यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं जो पाठक के दिल को द्रवित कर देता है. जूठन का दूसरी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है. पंजाबी में अनुवादकर्ता श्री द्वारका भारती के लिए यह आत्मकथा " एक साहित्यिक कृति या कलाकृति नहीं अपितु 'एक विलाप', 'लम्बी चीख', 'नर्म ह्रदय बिंधने वाली' तथा 'वेदना का दरिया' बहानेवाली कथा है."[1]

इस आत्मकथा का क्षेत्र लेखक का अपना बरला गाँव है, जहाँ लेखक रहते थे. उस मोहल्ले को 'दब्बोवाली जोहड़ी' से जाना जाता था. टूटी-फूटी गन्दी जोपडीयों में यह वाल्मीकि समाज अपनी जिन्दगी जीता था. तंग गलिया, भौकते हुए कुत्ते, गुमते हुए सुवर, नंग धडंग बच्चे यही इस मोहल्ले की कहानी है. यहाँ के लोगों को इन्सान नहीं 'चूहड़े' कहकर बुलाया जाता था. बच्चों को स्कूल जाना मना था. इसी बस्ती में लेखक का परिवार रहता था. शुरू-शुरू में एक रामसेवक नामक इसाई पादरी भंगी बच्चों को पढ़ाने आता था किन्तु ज्यादा दिन नहीं रहा. लेखक के पिता ने लेखक को सरकारी स्कूल में पढ़ने भेजा लेकिन यहाँ अछूत बच्चे को अलग बैठाया जाता था. उनका हैंडपंप अलग होता. उन्हें मारा पिटा जाता था और पढाई के नाम पर मास्टर उनसे केवल गाली-गलौच करता था. दूसरे दिन भी लेखक को वहीं सौप दिया जाता है. तीसरे दिन लेखक चुपचाप जाकर कक्षा से खींचकर बाहर झाड़ू लगवाता है. लेखक के पिताजी स्कूल के पास से गुजरते अपने बेटे के पास आकर सारी बाते सुनकर गुस्से में आकर लेखक के हाथ से झाड़ू दूर फ़ेक देते है और चीखते हुए कहते है- " कोण-सा मास्टर है वो द्रोणाचार्य की औलाद, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है..."[2] यहाँ लेखक के पिता में दलित चेतना का स्वर देखने मिलता है. ब्राह्मणवादी मास्टर पढाई का अधिकार अपनी जागीर समझते हैं. इसी सोच का विरोध लेखक के पिता करते है.

लेखक के पिता की आवाज सुन कर हेडमास्टर कलीराम गाली देकर धमकाते है लेकिन उनकी धमकी का कोई असर लेखक के पिता पर नहीं होता. जाते-जाते हेडमास्टर को कहते है कि- " मास्टर हो ....इसलिए जा रहा हूँ....पर इतना याद रखिए मास्टर... यों चूहड़े का यहीं पढ़ेगा.... इसी मदरसे में. और यों ही नहीं,इसके बाद और भी आवेंगे पढ़ने कू."[3] लेखक के पिता दूसरे दिन प्रधान सगवासिंह त्यागी की बैठक में जाकर उनको कहते है- " चौधरी साहब,

तम तो कहो ते सरकार ने चूहड़े-चमारों के जाकतो (बच्चों) के लिए मदरसों के दरवाजें खोल दिए है. और यहाँ वो हेडमास्टर मेरे इन जाकत कू पढ़ने के बजाय क्लास से बाहर लाके दिन भर झाड़ू लगवावे हैं. जिब यों दिन भर मदरसे में झाड़ू लगावेगा तो इब तम ही बताओं पढ़ेगा कब?"[4] यहाँ दलित चेतना का स्वर देखने मिलता है.

लेखक अपने घर आठवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचंद और शरतचंद्र के उपन्यास पढ़ने लगता है.रामायण और महाभारत की बातें पढ़ने और सुनने लगता है. धीरे-धीरे स्कूल की पढाई पूरी करके वह त्यागी इंटर कॉलेज में पहुँच जाता है. यह लेखक की जिन्दगी का एक नया मोड़ है जहाँ एक नयी सुबह दिखायी देती है. लेखक के दिल और दिमाग में वे सारी पुरानी बातें अभी भी चित्र की तरह अंकित है. लेखक की माँ सवर्णों के घर साफ-सफाई का काम करने जाती थी. शादी-ब्याह में ये लोग सवर्णों के घर सुबह से शाम तक जानवर की तरह काम करते थे. लेकिन बदले में मिलती थी- जूठन. ये लोग जूठन को ही अपनी जिन्दगी समझ लेते है. एक दिन लेखक की माँ ने सुखदेवसिंह त्यागी की लड़की की शादी में उनसें एक पत्तल खाने देने को कहती है. त्यागी ने लेखक की माँ को फटकारते हुए उसकी औकात बतलायी और चले जाने को कहते है. तभी लेखक की माँ सुखदेवसिंह त्यागी से कहती है- "इसे थाके अपने घर में धर ले. कल तड़के बरातियों को नाश्ते में खिला देणा...."[5] यहाँ लेखक की माँ में दलित चेतना देखने मिलती है जिसके कारण उस घटना के बाद जूठन लेना बंद हो जाता है. यह इस परिवार के जीवन की ऐसी घटना थी जिसने पूरे सवर्ण समाज को चुनौती दी थी.

एक बार स्कूल में मास्टर जी द्रोणाचार्य का पाठ पढ़ा रहे थे. मास्टर ने द्रोणाचार्य की गरीबी की बारे में कहा था कि भूख से तडपते अश्वत्थामा को द्रोणाचार्य ने दूध की जगह आटा पानी में घोलकर पिलाया था. तभी लेखक मास्टर जी से सवाल करते है कि- "अश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिलाया गया और हमें चावल का मांडा फिर भी महाकाव्य में हमारा जिक्र क्यों नहीं आया? किसी महाकवि ने हमारे जीवन पर एक भी शब्द क्यों नहीं लिखा?"[6] यहाँ लेखक में दलित चेतना का स्वर देखने मिलता है. लेखक को दसवीं की बोर्ड की परीक्षा थी. अपनी जाति के वे पहले लड़के थे जो हाईस्कूल की परीक्षा दे रहा था. गणित के पेपर से पहले एक दिन तैयारी के लिए मिला था. लेखक घर पर पढाई कर रहे थे तभी फौजसिंह त्यागी लेखक को अपने खेत में ईख बोने के लिए कहता है. लेखक अपनी परीक्षा की बात करता है फिर भी उसे जबर्दस्ती खेत में ले जाकर काम करना पड़ा था. फ़ौजसिंह की माँ दोपहर को खाना लेकर आती है और लेखक को ऊपर से रोटी देती है. लेखक लिखते है- "मैंने वो रोटियां उनके सामने फ़ेक दी और घर की ओर दौड़ पड़ा."[7] यहाँ लेखक के पात्र में दलित चेतना देखने मिलती है. जो समाज व्यवस्था के जाति भेद को ध्वंश करना चाहते है. इस घटना का असर यह होता है कि बस्ती के लोगों ने बेगारी करने से मना करना शुरू कर दिया था.

इस प्रकार अनेक यातनाओं और पीडाओं से गुजरते हुए लेखक अपने आगे की पढाई के लिए देहरादून जाते है. इस समाज का यह पहला बच्चा था जो एक बड़ी कॉलेज में प्रवेश पता हैं. यहाँ उसने जो फैक्टरी प्रशिक्षण लिया और उसकी प्रतियोगिता परीक्षा पास की. यहाँ से उच्च शिक्षा के लिए जबलपुर और जबलपुर से बम्बई जाना पड़ता है. बम्बई में लेखक को एक विशाल पुस्तकालय मिलता है. जहाँ देश-विदेश के लेखकों का साहित्य पढ़ा और अपनी एक अलग विचारधारा बनी और व्यक्तित्व का विकास हुआ. बम्बई से लेखक को महाराष्ट्र के एक दूसरे शहर चंद्रपुर जाना पड़ता है. लेखक के मित्र पाटिल के एक मित्र ने कुलकर्णी से परिचय कराया था. एक-दो मुलाकात से उनको लेखक से आत्मीयता हो जाती है. उनकी बेटी सविता का झुकाव लेखक पर था. कुलकर्णी परिवार को लेखक की वाल्मीकि सरनेम से उन्हें ब्राह्मन समझते थे. इसीलिए दीपावली के चतुदर्शी को उनके घर स्नान करने के लिए बुलाया था. महाराष्ट्रियन ब्राह्मणों में परम्परा थी की घर की स्त्री परिवार से पुरुषों को ब्रह्ममुहर्त में उबटन और तेल मालिश करके स्नान कराती थी. एक दिन कुलकर्णी के घर प्राध्यपक काम्बले जी को अलग प्याले में चाय पिलायी थी. लेखक सविता को इस बारे में पूछता हैं तो पूरी बात सुने कहती हैं कि " "आज अचानक उसका खयाल कैसे आ गया इस वक्त." सविता ने हैरानी से पूछा.

" उसे चाय अलग बर्तनों में पिलाई थी?" मैंने सख्त लहजे में पूछा.

" हाँ, घर में जितने भी एस.सी. और मुसलमान आते है, उन सबके लिए अलग बर्तन रखे हुए है." सविता ने सहज भाव से कहा.

" यह भेदभाव तुम्हें सही लगता है?" मैंने पूछा. मेरे शब्दों में तीखेपन को उसने महसूस कर लिया था.

" अरे... तुम नाराज क्यों होते हो?...उन्हें अपने बर्तनों में कैसे खिला सकते है?" उसने प्रश्न किया.

" क्यों नहीं खिला सकते?.....होटल में ....मेस में तो सब एक साथ खाते है. फिर घर में क्यों तकलीफ है?""[8] यहाँ लेखक के पात्र में दलित चेतना के स्वर देखने मिलता है. लेखक सविता को अपनी सरनेम की सच्चाई बता देते है.

इसप्रकार आत्मकथा के अंत में लेखक अपनी पहचान को दृढ़ करता हुआ इस नतीजे पर पहुँचता हैं कि- " जाति भारतीय समाज में सबसे बड़ा घटक है. जाति पैदा होते ही व्यक्ति की नियती तय कर देती है. पैदा होना व्यक्ति के अधिकार में नहीं होता. यदि होता तो मैं भंगी के घर पैदा क्यों होता."[9] लेखक एक और प्रश्न पूछना चाहता है और जानना चाहता हैं कि सवर्णो के मन में दलितों के प्रति इतनी घृणा क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर आत्मकथा लिखने के बाद भी प्राप्त नहीं होता. इसप्रकार आत्मकथा समाप्त हो गयी किन्तु लेखक की व्यथा-कथा अभी भी अधूरी है. क्योंकि उसके प्रश्न का कोई जवाब उसे आज तक नहीं मिला.

निष्कर्ष: कह सकते है कि 'जूठन' एक व्यक्ति की आत्मकथा होकर भी यह पूरे दलित जीवन की नारकीय यातना, दलित जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्त करनेवाली रचना है. जिसमें अतीत की पीडाएं है, वर्तमान का ज्वलंत यथार्थ है और भविष्य के सपने है.

संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

(1) चर्चित हिंदी की दलित आत्मकथाएँ, डॉ.ललिता कौशल,पृ.सं-55

(2) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-16

(3) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-16

(4) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-17

(5) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-21

(6) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-34

(7) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-74

(8) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-120

(9) जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं.-163